वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ शुक्ल १०, सोमवार,
दिनांक-०७-०६-१९७६, गाथा-१, प्रवचन-२

यह परमात्मप्रकाश की पहली गाथा। यहाँ आया है। देखो! सिद्ध भगवान को नमस्कार किया है। **जब सिद्ध परमेष्ठी अनन्त चतुष्टयरूप परिणमे,...** है यहाँ से? सिद्ध परमेष्ठी अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य—बल, इसरूप परिणमे। शक्तिरूप से तो थे परन्तु पर्यायरूप से परिणमे, **तब कार्यसमयसार हुए...** तब कार्य पूर्ण हुआ। तब कार्यसमयसार हुआ। लो, यह कार्य। जीव का समयसार कार्य (हो), वह उसका कार्य है। अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द और वीर्य, उसरूप होना, यह उनका कार्य है। **अन्तरात्म अवस्था में कारणसमयसार थे।** अन्तरात्म अवस्था थी। सम्यग्दर्शन में शुद्ध चैतन्यशक्ति—स्वभाव, उसका भान और अनुभव हुआ, तब कारणसमयसार तो त्रिकाल था। पर्यायरूप से सम्यग्दर्शन में आया, तब अन्तरात्मा समयसार पर्यायरूप हुआ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आया, यह आ ही गया।

अन्तरात्मा। **अन्तरात्म अवस्था में...** अवस्था में कारणसमयसार था। आहाहा! त्रिकाल वस्तु जो शुद्ध चैतन्य शक्तिरूप है, वह मुक्तस्वरूप ही है। शक्ति अपेक्षा से, द्रव्य अपेक्षा से त्रिकाल के स्वभावभाव की अपेक्षा से आत्मा मुक्तस्वरूप ही है। परन्तु वह शक्ति से और सामर्थ्य से (है)। उसकी पर्याय में वह परिणमन हो, तब वह कार्यसमयसार सिद्ध को कहा जाता है। अन्तरात्म अवस्था में कारणसमयसार।

जैसे सोना अन्य धातु के मिलाप से रहित हुआ,... जैसे सोना अन्य धातु के मिलाप से रहित हुआ। मिलाप था सही। खान में सोना और पत्थर दोनों इकट्ठे होते हैं न? **अपने सोलहवानरूप प्रगट होता है,...** सोना वानरूप प्रगट हुआ। **उसी तरह कर्म-कलंकरहित सिद्धपर्यायरूप परिणमे।** इसी प्रकार आत्मा कर्मकलंक की... जैसे वह सोना धातु के मिलाप से रहित हुआ, उसी प्रकार आत्मा कर्मकलंकरहित सिद्धपर्याय होकर परिणमे। आहाहा!

तथा पंचास्तिकाय ग्रन्थ में भी कहा है—पंचास्तिकाय में भी कहा है कि **जो पर्यायार्थिकनयकर 'अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो'** पर्यायनय से तो सिद्धपर्याय नहीं थी, वह अभूतपूर्व नयी हुई। भगवान आत्मा को सिद्धपर्याय तो अभूतपूर्व—पूर्व में नहीं थी, वह हुई। पर्याय अपेक्षा से। आहाहा! **अर्थात् जो पहले सिद्धपर्याय कभी नहीं पायी थी,...** अनन्त काल में सिद्ध की पर्याय कभी नहीं मिली थी। **वह कर्मकलंक के विनाश से पायी।** कर्मकलंक के नाश से मिली।

यह पर्यायार्थिकनय की मुख्यता से कथन है... क्या कहा यह? सिद्ध भगवान अभूत अर्थात् पूर्व में नहीं थी, ऐसी अभूत पर्याय को प्राप्त हुए, यह पर्यायनय का कथन है। अवस्थादृष्टि का यह कथन है। अवस्था में नहीं थी, वह अवस्था अभूतपूर्व—नयी हुई, यह अवस्थादृष्टि का कथन है। आहाहा! **और द्रव्यार्थिकनयकर शक्ति की अपेक्षा...** परन्तु वस्तु की दृष्टि से देखें, आत्मा वस्तु, उसकी शक्ति, उसका स्वभाव, उसके सामर्थ्य का बल, उस दृष्टि से देखें तो सदा शुद्ध है। आहाहा! जिसका शक्ति स्वभाव शुद्ध ही है और बुद्ध है—ज्ञानस्वभाव है। आहाहा! भाषा तो अनन्त बार सीखा था। शास्त्र के पठन में आता है न? इसलिए इसे धारणा में आवे तो सही। परन्तु अनुभव में आये बिना शक्तिरूप से सिद्ध परिणमे, ऐसा नहीं होता। आत्मा का अनुभव शक्ति ध्रुव चैतन्य। चैतन्यस्वभाव, चैतन्य शक्ति पूर्ण, उसका आश्रय लेकर अथवा उसका परिणमन होना, शुद्ध पर्याय होना, वह पर्यायनय से नहीं थी और हुई, ऐसा कहने में आता है। वस्तुदृष्टि से तो त्रिकाल शुद्ध और बुद्ध ज्ञानपिण्ड ही है। आहाहा!

शुद्ध बुद्ध (ज्ञान) स्वभाव तिष्ठता है। पवित्र और ज्ञानस्वभाव से अनादि शक्ति -अपेक्षा से तो है। उसे परिणमे तो हो, ऐसा नहीं है। वह तो परिणमे तो हो, यह पर्याय की अपेक्षा से बात है। आहाहा! वस्तु तो वस्तु है। वस्तु है, वह तो शक्ति अपेक्षा से मोक्षपर्याय होती है। वह पर्याय होती है, वह वस्तु में है, उसमें से आती है न? यह तो सिद्धपर्याय, सिद्धस्वरूप त्रिकाल है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आहाहा! जो दशा... उसमें—नियमसार में कहा नहीं? नियमरूप तो त्रिकाल है। कारण नियमसार कहो या नियमसार वस्तु कहो, वह नियमरूप तो त्रिकाल है। आहाहा! ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि

स्वभाव त्रिकाल नियम में है। वस्तु में त्रिकाल है। आहाहा! उसे पर्याय में प्रगट हो, तब कार्यनियम कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

प्रायश्चित्त में भी ऐसा लिया है न? प्रायश्चित्त। प्रायश्चित्त। बहोलुं जिसका चित्त ज्ञानस्वभाव त्रिकाल है वह तो। प्रायश्चित्त स्वरूप ही है। प्राय अर्थात्? बहुलता से अनन्त चित्तस्वरूप ही है वह। आहाहा! तो वह उसकी पर्याय में प्रायश्चित्तरूप निर्मल दशा प्रगट होती है। आहाहा! जो कुछ पर्याय में होता है, वह स्वरूप से तो त्रिकाल है ही, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! यह शुद्ध बुद्ध।

जैसे धातु पाषाण के मेल में भी... क्या कहते हैं? सोना और धातु का मेल—संयोग होने पर भी, **शक्तिरूप सुवर्ण मौजूद ही है,...** सोना सोनेरूप से, शक्तिरूप से तो वह धातु के मिलाप के समय भी शक्तिरूप से तो सोना, सोना ही है। आहाहा! समझ में आया? **धातु पाषाण के मेल में भी शक्तिरूप सुवर्ण मौजूद ही है, क्योंकि सुवर्ण-शक्ति सुवर्ण में सदा ही रहती है,...** सुवर्ण शक्ति का सामर्थ्य सुवर्ण में सदा रहता है। आहाहा!

जब परवस्तु का संयोग दूर हो जाता है,... संयोगी पत्थर का मिलाप जैसे दूर हो जाता है, **तब वह व्यक्तिरूप होता है।** सोना। सोलहवान शक्तिरूप से तो है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पत्थर के मिलाप के समय भी सोलहवान शक्तिरूप से ही है। सोलहवान कहो, पूर्ण कहो। चौंसठपहर कहा था न? पीपर चौंसठपहरी। वह तो सोलह आना। आहाहा! पूर्णिमा के दिन चन्द्र खिलता है, वह सोलह कला से खिलता है। वह पूर्ण खिलता है। इसी प्रकार सोना मिलापरहित पूर्ण प्रगट होता है, तब सोलहवान होता है। सोलह आना—रुपया पूर्ण। इसी प्रकार छोटी पीपर में शक्तिरूप से सोलह आना अर्थात् रुपयारूप शक्ति है, वह पर्याय में प्रगट होती है। है, वह प्रगट होती है। इसी प्रकार भगवान आत्मा कर्म के सम्बन्ध में भी उसकी शक्ति तो सोलहवान पूरा-पूरा सोलह आना ही है। आहाहा! जिसका ज्ञान, आनन्द, वीर्य, दर्शन वह पूर्ण ही है। वस्तुरूप से पूर्ण है।

परवस्तु का संयोग दूर हो जाता है, तब वह व्यक्तिरूप होता है। सारांश यह है कि शक्तिरूप तो पहले ही था, लेकिन व्यक्तिरूप सिद्धपर्याय पाने से हुआ। ऐसे सिद्ध

की शक्तिरूप से पहले से थी। आहाहा! कैसे जँचे? एक समय की पर्याय में वस्तु शक्तिरूप पूर्ण थी ही। वह पर्याय में उसका भान होता है। समझ में आया? मार्ग भारी सूक्ष्म, भाई! **शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर सभी जीव सदा शुद्ध ही हैं।** वह तो शक्तिरूप थे, सिद्धपद तो शक्तिरूप से आत्मा में है। जैसे छोटी पीपर में चौंसठपहरी चरपराई है। सोने में पत्थर के मिलाप के समय भी सोलहवान सोना है। उसी प्रकार कर्म के कलंक के समय भी भगवान आत्मा में सिद्धपना पूर्ण शुद्ध है। अरे! यह बात।

द्रव्यार्थिकनयकर सभी जीव... शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर ऐसा लिया है। शुद्ध द्रव्य की दृष्टि से देखने पर भगवान आत्मा **सभी जीव...** अभव्य भी। भव्य, अभव्य सब। आहाहा! **सदा शुद्ध ही हैं।** सदा त्रिकाल पवित्र ही है। पवित्र ही है। आहाहा! यह पर्याय में उसे बैठे, तब पवित्र है, ऐसा उसे हुआ। वर्तमान पर्याय में सदा शुद्ध है, ऐसा जब उसे जँचे, तब सदा शुद्ध है—ऐसी प्रतीति उसे होती है। पर्याय में आये बिना उसे 'सदा शुद्ध है'—ऐसी प्रतीति नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए १७वीं गाथा में (समयसार में) कहा न? कि पर्याय में शुद्ध वस्तु ध्रुव शुद्ध सोलहवान पूर्ण, वह पर्याय में पूर्ण द्रव्य ही ज्ञात होता है। समझ में आया? ज्ञान की एक समय की पर्याय भी ज्ञान है न वह? तो ज्ञान है, उस पर्याय का स्वभाव स्वपरप्रकाशक है। तो स्व प्रकाशता ही है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु वह स्वप्रकाशक है, पर्याय में जाननेवाला ही जानने में आता है, परन्तु दृष्टि इसकी द्रव्य पर नहीं है, इसलिए इसे पर्याय पर दृष्टि होने से जाननेवाला जानने में आता है, वहाँ इसकी दृष्टि नहीं है। आहाहा! मात्र वर्तमान अवस्था पर दृष्टि है, इससे राग के साथ एकत्वबुद्धि में राग को जानता है, ऐसा यह मानता है। समझ में आया? अकेला परप्रकाशक है, ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा! कहो, दिलीप! कहाँ गये तेरे दादा? कहो, समझ में आया? यह तो धर्म की कॉलेज है। कितना ही यह सीखकर आया हो तो अधिक समझ में आये। आहाहा!

परमात्मप्रकाश है न यह? कहते हैं, परमात्मप्रकाश पर्याय में है, वह स्वभाव में परमात्मप्रकाश है ही। आहाहा! जो-जो पर्याय में होता है, वह-वह उतना वह अन्दर स्वभाव में पूर्ण है। आहाहा! पूर्ण न हो तो अल्प काल की पर्याय आवे कहाँ से?

आहाहा! समझ में आया? जरा सूक्ष्म विषय है। जैनदर्शन अर्थात् कि वस्तुदर्शन बहुत सूक्ष्म है। आहाहा!

कहते हैं, **शुद्ध द्रव्यार्थि....** शुद्ध द्रव्य जिसका प्रयोजन, ऐसा जो ज्ञान। क्या? शुद्ध द्रव्य अर्थात् वस्तु, अर्थि अर्थात् प्रयोजन। जिस ज्ञान के अंश का शुद्ध द्रव्य प्रयोजन है, उस (दृष्टि से) देखें तो **सभी जीव सदा ...सभी जीव सदा... सभी जीव सदा शुद्ध ही हैं।** आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु त्रिकाल शुद्ध है। निगोद की अवस्था में हो... आहाहा! देखो तो सही! निगोद का एक शरीर, उसमें अनन्त जीव। शरीर की अवगाहना कद कितना? अँगुल के असंख्यवें भाग में। निगोद के एक शरीर का कद चौड़ा कितना? कि अँगुल के असंख्य भाग में। एक शरीर में अनन्त जीव। आहाहा! उस जीव का कद कितना? इस शरीरप्रमाण। उसका स्वभाव कितना? आहाहा! भले पर्याय में अक्षर का अनन्तवाँ भाग विकासरूप रहा। परन्तु जो ज्ञानशक्ति है, सामर्थ्य है, वह तो वहाँ पूर्ण है। समझ में आया?

शुद्धद्रव्यार्थिकनय से देखें तो सभी जीव, ऐसा लिया न? **शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर सभी जीव सदा...** तो निगोद का जीव भी (आ गया)। आहाहा! आता है न? नियमसार में। सर्व संसारी सिद्धस्वरूप है। यह गाथा बाद में आती है। आहाहा! वह शक्ति की अपेक्षा से। सर्व जीव सिद्धस्वरूप ही है। संसारी भी। आहाहा! यह तो पर्याय की अपेक्षा से संसारी कहा जाता है और पर्याय की अपेक्षा से सिद्ध कहा जाता है। वस्तु की अपेक्षा से भगवान आत्मा सदा सभी जीव शुद्ध द्रव्य के प्रयोजन की दृष्टि से देखें तो.. आहाहा! त्रिकाल शुद्ध-शुद्ध-शुद्ध पवित्र का पिण्ड है। अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है। आहाहा!

ऐसा ही द्रव्यसंग्रह में कहा है, 'सव्वे सुद्धाहु सुद्धणया'... द्रव्यसंग्रह में है न? गाथा १३वीं। १३वीं गाथा है। द्रव्यसंग्रह की १३वीं। वह पंचास्तिकाय की २०वीं थी। पहले कही न? सिद्धपर्याय नहीं थी और हुई, वह पंचास्तिकाय की २० गाथा। और यह 'सव्वे सुद्धाहु सुद्धणया' द्रव्यसंग्रह की गाथा १३। पहले उतारी है इसमें। तब लिख ली थी। पहले से यहाँ लिखी है। समझ में आया? **'सव्वे सुद्धाहु सुद्धणया'...** आहाहा! श्रीमद् ने कहा न? 'सर्व जीव है सुद्धसम'। लो! उसमें अभवय निकल गये? आहाहा!

जिसका शक्ति स्वभाव तो शुद्ध ही है। पूर्ण शुद्ध है। द्रव्यस्वभाव, उसका शक्तिरूप सामर्थ्य स्वभाव तो पूर्ण ही है। पर्याय में भले निगोद में अक्षर के अनन्तवें भाग हो और सिद्ध को केवलपर्याय हो। सिद्ध को केवल (ज्ञान) पूर्ण पर्याय हो। यहाँ अक्षर के अनन्तवें भाग हो। वह तो पर्याय की दृष्टि अपेक्षा से बात है। आहाहा! वस्तुरूप से तो त्रिकाल पवित्र पिण्ड पूरा शुद्ध ही है। तत्त्व है न? जीवतत्त्व है न? जीव वस्तु है न? तो वस्तु में पूर्ण अनन्त गुण बसे हुए त्रिकाल हैं। आहाहा! उसे यहाँ गुण और शक्तिरूप से कहा है।

शुद्ध नयकर सभी जीव शक्तिरूप शुद्ध हैं और पर्यायार्थिकनय से व्यक्तिकर शुद्ध हुए। सिद्ध भगवान। पर्याय में जिसका प्रयोजन है, ऐसे ज्ञान की अपेक्षा से **व्यक्तिकर शुद्ध हुए।** सिद्ध भगवान व्यक्ति अर्थात् प्रगट सिद्ध हुए। शक्तिरूप थे, वे प्रगटरूप हुए। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म ज्ञान है। यह वह एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया करके सामायिक हो गयी। तस्सउत्तरी करणेण तावकाय ठाणेण माणेण झाणेणं। हो गया कायोत्सर्ग। धूल भी नहीं कायोत्सर्ग। आहाहा! जहाँ भगवान एक समय में पूर्ण अनन्त गुण से (विराजमान है)। अनन्त गुण हैं, वे अनन्त गुण पूर्ण हैं। वह अनन्त गुण का पूर्णरूप, शक्तिरूप वह आत्मा। आहाहा!

पर्यायार्थिकनय से व्यक्तिकर शुद्ध हुए। समझ में आया या नहीं इसमें? सिद्ध भगवान... नमस्कार भी सिद्ध को करना है न? ऐसी तो पाँच गाथायें लेंगे। हो गये, होंगे, वर्तमान भगवान विराजते हैं, उन्हें सिद्ध करके नमस्कार करते हैं। 'सीमन्धर' भगवान। आहाहा! बड़ा मांगलिक किया है। आहाहा! **पर्यायार्थिकनय से व्यक्तिकर...** वस्तुरूप से तो शुद्ध बुद्ध ज्ञानघन हैं। ज्ञान की अपेक्षा से ज्ञानघन, आनन्द की अपेक्षा से आनन्दघन, श्रद्धा की अपेक्षा से श्रद्धाघन, शान्ति-चारित्र की अपेक्षा से शान्तिघन, वीर्य की अपेक्षा से वीर्यघन, कर्ताशक्ति की अपेक्षा से कर्ताघन, कर्मशक्ति की अपेक्षा से कर्मघन त्रिकाल, हों! आहाहा! करण—साधन की अपेक्षा से करणघन—ऐसे अनन्त गुण का पूर्णरूप से घन शक्तिरूप से भगवान विराजता है। आहाहा!

किस कारण से? वे व्यक्तिरूप हुए? ऐसा कहते हैं। शक्तिरूप शुद्ध बुद्ध थे।

अब व्यक्तिरूप सिद्धदशा प्राप्त की। प्रगटरूप। वह शक्तिरूप थी, यह व्यक्तिरूप प्रगट की। किस कारण से प्रगट हुआ? सिद्धपना किस कारण से प्रगट हुआ? **ध्यानाग्निना अर्थात् ध्यानरूपी अग्निकर...** ध्यानरूपी अग्नि के कारण से। आहाहा! चैतन्य का, आनन्द का नाथ प्रभु, वहाँ ध्यान लगाया। पूर्ण स्वरूप को ध्येय बनाकर ध्यान का विषय पूर्ण बनाया। आहाहा! सम्यक् ध्यान, उसका ध्येय में, विषय में पूर्णानन्द को ध्यान में विषय बनाया। ध्यान की पर्याय विषयी और उसका विषय है, वह पूर्ण विषय। आहाहा! समझ में आया? उसमें बहुत आता है यह। अध्यात्म तरंगिणी है न? इसकी टीका में बहुत आता है। ध्यान विषय कुरु, ऐसा बहुत आता है उसमें। बहुत बार कहा है। ध्यान विषय कुरु। तीन-चार जगह आता है। ध्यान का विषय बना। त्रिकाल को ध्यान का विषय बना। आहाहा! धीरुभाई! वहाँ इतने वर्ष में ऐसा सुना नहीं था। वाड़ा में है कहाँ? वाडा बाँधकर बैठे हैं। 'वाडा बाँधी बैठा रे...' तुम्हारा यह वाडा नहीं? (कोई ऐसा कहेगा)। यह वाड़ा कहाँ है? यह तो वस्तु की स्थिति है। वस्तु का स्वरूप है। ज्ञान से पूर्ण, दर्शन से पूर्ण, आनन्द से पूर्ण, ऐसे अनन्त गुण पूर्ण इदं शक्ति से विराजमान भगवान आत्मा, उसे ध्यान का विषय बनाकर, यह तो पर्याय हुई। ध्यान है, वह तो पर्याय हुई। उसका विषय हुआ त्रिकाली। आहाहा!

ध्यानाग्निना अर्थात् ध्यानरूपी अग्निकर कर्मरूपी कलंकों को भस्म किया,... अशुद्ध परिणमनरूपी विकार का नाश किया। कर्म का नाश किया, यह कहेंगे अभी। यह असद्भूतनय से। क्या कहा यह? **ध्यानाग्निना अर्थात् ध्यानरूपी अग्निकर कर्मरूपी कलंकों को भस्म किया,...** साधारण बात ली है न! फिर कर्म के दो भाग कर देंगे। अशुद्ध और कर्म जड़। **तब सिद्ध परमात्मा हुए।** ध्यान अग्नि लगायी अन्दर में। आहाहा! वर्तमान ध्यान में वस्तु को ध्येय बनाकर ध्यान किया, उस ध्यानाग्नि से सिद्ध हुआ। व्रत, तप, भक्ति और पूजा से सिद्ध नहीं हुए। समझ में आया? आहाहा!

कर्मरूपी कलंकों को भस्म किया,... वहाँ इसका अर्थ करेंगे, हों! **तब सिद्ध परमात्मा हुए। वह ध्यान कौन सा है?** ध्यान को क्या कहना? **आगम की अपेक्षा तो वीतराग निर्विकल्प शुक्लध्यान है...** अन्तिम बात है न, केवलज्ञान लेने की। सिद्धपर्याय के समय। सिद्धपर्याय होती है, तब उसका ध्यान **आगम की अपेक्षा तो वीतराग निर्विकल्प**

शुक्लध्यान है... विकल्प अर्थात् भेद बिना का निर्विकल्प त्रिकाली भगवान को ध्यान में लेकर। वीतरागी निर्विकल्प ध्यान, वह शुक्लध्यान। उससे सिद्ध हुए। आहाहा!

और अध्यात्म की अपेक्षा वीतराग निर्विकल्प रूपातीत ध्यान है। रूपातीत। अन्दर कहेंगे। सिद्ध भगवान का ध्यान, वह रूपातीत। सिद्ध अर्थात् स्वयं त्रिकाली, उसका ध्यान रूपातीत। आहाहा! अच्छा विस्तार किया है। अध्यात्म की अपेक्षा से वीतराग अभेद रूपातीत ध्यान। अकेले पूर्णानन्द को दृष्टि में लेकर विषय बनाकर स्थिर होना, वह अध्यात्म की अपेक्षा से रूपातीत। **दूसरी जगह भी कहा है—'पदस्थं'** षट्प्राभृत (में) लिखा है। षट्प्राभृत में पृष्ठ २३६ में लिखा है। षट्पाहुड़ में आता है।

णमोकार मन्त्र आदि का जो ध्यान है, वह पदस्थ... पद-पद। पाँच पद में स्थित भगवान पंच परमेष्ठी का ध्यान, पदस्थ ध्यान कहा जाता है। **णमोकार मन्त्र....** अर्थात् कि पंच परमेष्ठी अरिहन्त-सिद्ध आदि। **जो ध्यान है, वह पदस्थ कहलाता है,...** अर्थात् कि पाँच पद में स्थ—रहे हुए, उनका ध्यान, वह पदस्थ ध्यान। समाधिशतक में कहा है न? कि दीपक को दीपक स्पर्शकर दीपक होता है। तथा एक वृक्ष स्वयं घिसकर (अग्नि) होता है। इसी प्रकार पंच परमेष्ठी का ध्यान करके भी सिद्ध... यह ध्यान जैसा आत्मा है, ऐसा कहा। तथा एक वृक्ष घिसकर अर्थात् अपना आत्मा ही उसमें एकाग्र होकर—घिसकर ज्ञान-आनन्द होता है, सिद्धपद होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों। वस्तु तो एक ही है परन्तु उसका निमित्तपना पंच परमेष्ठी का लक्ष्य में लेकर फिर अन्दर उतरा है; इसलिए वहाँ उसे पदस्थ कहा है। यह समाधिशतक में लिया है। दो बोल लिये हैं।

पिण्ड (शरीर) में ठहरा हुआ जो निज आत्मा है,... देखा? **उसका चिन्तवन...** लो! यह स्वयं ही पंच परमेष्ठीस्वरूप है अन्दर। आहाहा! पिण्ड के पीछे अर्थ यह लिया। देखा! पिण्ड जो यह शरीर, उसमें निज आत्मा जो है, **उसका चिन्तवन, वह पिण्डस्थ है,...** आहाहा! चिन्तवन अर्थात् एकाग्रता, हों! चिन्तवन अर्थात् विकल्प नहीं। आहाहा! शरीर के पिण्ड में रहा हुआ प्रभु; वह रहा है अपने में, परन्तु यहाँ शरीर का अवगाहन

गिनना है न? है तो उसमें। ऐसा जो भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप, उसका ध्यान, यह पदस्थध्यान कहा जाता है। ऐसी सब बातें वहाँ हो नहीं। आहाहा!

सर्व चिद्रूप (सकल परमात्मा) जो अरहन्तदेव उनका ध्यान वह रूपस्थ है,... है? पिण्ड में रहा हुआ स्वयं, उसका ध्यान पिण्डस्थ। और सकल परमात्मा अरिहन्त का ध्यान वह रूपस्थ। वे रूप में रहे हुए हैं। सर्वज्ञ की पर्याय में रहे हुए, उसका ध्यान, वह रूपस्थध्यान। आहाहा! उनका ध्यान करके भी फिर उनका लक्ष्य छोड़ देना। ऐसा। आहाहा! **और निरंजन (सिद्ध भगवान) का ध्यान रूपातीत कहा जाता है।** शरीररहित हो गया न वे? उनका ध्यान **रूपातीत कहा जाता है।** आहाहा!

वस्तु के स्वभाव से विचारा जावे, तो शुद्ध आत्मा का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप अभेद रत्नत्रयमयी जो निर्विकल्प समाधि है,... आहाहा! ध्यान का लक्षण कहते हैं कि **शुद्ध आत्मा का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप अभेद रत्नत्रयमयी जो निर्विकल्प समाधि है,...** आहाहा!

मुमुक्षु : जयसेनाचार्य का लिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, है न! जयसेनाचार्य का बहुत आधार लिया। लिखा है। प्रस्तावना में बहुत लिखा है। बहुत आधार कुन्दकुन्दाचार्य का लिया है, नियमसार का लिया है।

वस्तु के स्वभाव से विचारा जावे,... भगवान आत्मा वस्तु है। जगत का तत्त्व है जगत से भिन्न, ऐसे वस्तु का-स्वभाव का विचार करें तो... आहाहा! **शुद्ध आत्मा का सम्यग्दर्शन,...** शुद्ध त्रिकाली भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन, त्रिकाली शुद्ध आत्मा का **सम्यग्ज्ञान,...** त्रिकाली शुद्ध आत्मा में **सम्यक्चारित्ररूप...** रमणता वह **अभेद रत्नत्रयमयी जो निर्विकल्प समाधि है,...** शान्ति... शान्ति... शान्ति... समाधि वे बाबा लगाते हैं, वह नहीं, हों! यहाँ तो निर्विकल्प शुद्ध आत्मा त्रिकाली, उसका सम्यग्दर्शन, उसका सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र उसरूप। ऐसा है न? **रत्नत्रयमयी निर्विकल्प समाधि...** उन तीन को निर्विकल्प समाधि कहा है। राग बिना की निर्विकल्प शान्ति जिसमें प्रगट हो। आहाहा! आधि, व्याधि, उपाधि रहित समाधि। आधि अर्थात् संकल्प-विकल्प; व्याधि—शरीर

की रोग अवस्था; उपाधि—यह संयोग। तीन से रहित वह अन्दर शुद्ध आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्नत्रयमय निर्विकल्प समाधि उसे कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन, वह निर्विकल्प समाधि। आहाहा! सम्यग्ज्ञान, वह निर्विकल्प समाधि, स्वरूप की स्थिरता, वह निर्विकल्प समाधि। आहाहा!

उससे उत्पन्न हुआ... ऐसी निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न हुआ। **वीतराग परमानन्द समरसीभाव...** आहाहा! वीतराग परमानन्द आनन्द उत्पन्न हुआ अन्दर। **वीतराग परमानन्द समरसीभाव सुखरस का आस्वाद, वही जिसका स्वरूप है,...** आहाहा! शुद्ध भगवान त्रिकाली आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह रत्नत्रयमय जो ध्यान, समाधि। उसमें क्या उत्पन्न हो समाधि में? परम आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का रस उत्पन्न होता है। आहाहा! वह तीनमय आनन्द—परमानन्द उत्पन्न होता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। आहाहा!

कहते हैं, **उससे उत्पन्न हुआ वीतराग परमानन्द...** वीतरागी आनन्द, वह भी परमानन्द। यह विषय के सुख को आनन्द मानता है न? राग में सुख मानकर वेदता है। वह तो कल्पना है। यह तो शुद्ध आत्मा, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द, पूर्ण-पूर्ण लबालब शक्तिरूप से भरा है। उसका ध्यान करने से पर्याय में... आहाहा! परमानन्द वीतरागी समरसी वीतरागी परमानन्द। वापस समरसी शान्त... शान्त... शान्त... आहाहा! ऐसे सुखरस का आस्वाद, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद, **वही जिसका स्वरूप है, ऐसा ध्यान का लक्षण जानना चाहिए।** आहाहा! वह थोथा ध्यान लगावे और अस्ति क्या है, इसकी खबर नहीं, ऐसा कहते हैं। वह कहता है न रजनीश? विकल्प तोड़ डालना, विकल्प तोड़ डालना। परन्तु विकल्प तोड़े कहाँ? किसे लक्ष्य में लेकर? अस्तिरूप से शुद्ध बुद्ध त्रिकाल है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रमय परिणमन करने से विकल्प टूटकर निर्विकल्प शान्ति उसे होती है। समझ में आया? और उसका अस्तित्व कितना कहाँ? उसकी खबर बिना ध्यान करता है, वह उसका ध्यान राग में जाता है अकेला। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा का अस्तित्व कितना है? कि **वस्तु के स्वभाव से विचारा**

जावे, तो शुद्ध आत्मा का... त्रिकाल। उसकी **सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप...** निर्विकल्प जो समाधि आनन्द शान्ति, उसका फल वीतरागी परमानन्द। समरसी वीतराग समरस। आहाहा! 'राग आग दाह दहे सदा, ताते समामृत सेईये' आता है न?

मुमुक्षु : 'राग आग दाह दहे सदा, ताते समामृत सेईये'

पूज्य गुरुदेवश्री : यह। आहाहा!

चाहे तो शुभ विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति का हो, भगवान के स्मरण का हो। परन्तु वह राग आग है। वह '(राग) आग दाह दहे सदा, ताते समामृत सेईये'। आत्मा के स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान-शान्तिरूप दशा से समरस आनन्द प्रगट हो, वह जिसका लक्ष्य। ध्यान में ध्येय पूर्ण वस्तु आती है और पूर्ण वस्तु की प्रतीति, ज्ञान और रमणता, उससे उत्पन्न होती निर्विकल्प समाधि, उससे उत्पन्न होता आनन्द। आहाहा! ऐसा जो समरसी भाव पर्याय का, हों! वीतरागी। क्यों? स्वयं वीतराग परमानन्द समरसीभाव सुखरस का समुद्र है। क्या कहा यह? वह शुद्ध कहा था न, शुद्ध आत्मा? शुद्ध आत्मा। पहला शब्द है न? वह वीतरागी परमानन्द समरसीभाव शुद्धरस का सागर है। आहाहा! उसका ध्यान करके पर्याय में परमानन्द समरसी दशा प्रगट हुई। उसमें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, वह ध्यान का लक्षण है। समझ में आया?

ऐसा कहकर शुद्ध आत्मा ध्यान का विषय भी कहा और उसके आश्रय से हुआ दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनरूप निर्विकल्प शान्ति कही, वह समाधि। और ऐसी जो निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न एकरूप का, अब उससे वीतरागी परमानन्द अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद उत्पन्न हो, उसे ध्यान कहा जाता है। आहाहा! सब ॐ... ॐ... करते हैं न? ॐ णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... यह ध्यान नहीं। आहाहा! इसमें तो राग / आकुलता आती है। जिस ध्यान में परमसमरसी वीतरागी आनन्द, परम आनन्द, वीतरागी परन्तु परम आनन्द समरसीभाव, उसमें वह भी सुखरस का आस्वाद। आहाहा! आनन्द के रस का स्वाद। आहाहा! वह ध्यान का लक्षण है। यह ध्यान का फल आया, वह उसका लक्षण है। ध्यान में आनन्द न आवे और ध्यान करते हैं, कहते हैं। आहाहा! आत्मा का ध्यान (करते हैं) परन्तु आनन्द आता नहीं। वह आत्मा का ध्यान ही नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया?

ऐसा ध्यान का लक्षण जानना चाहिए। आहाहा! यह ध्यानाग्नि कही है न? इससे भस्म (होते हैं), उसकी व्याख्या चलती है। ध्यानाग्नि से भस्म किया। वह ध्यानाग्नि कैसी? इसकी व्याख्या है। **इसी ध्यान के प्रभाव से कर्मरूपी मैल, वही हुआ कलंक,...** आहाहा! पुण्य-पाप का भाव, वह कर्मरूपी मैल है, कलंक है। आहाहा! शुभ-अशुभभाव, स्तवन, स्तुति, पठन, पाठन, चिन्तवन—ऐसा जो भाव, वह कलंक है। समझ में आया? **ध्यान के प्रभाव से कर्मरूपी मैल, वही हुआ कलंक,...** आहाहा! यह विकल्प है, वह कलंक है, कहते हैं। आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधता है, वह भाव कलंक है। ध्यानाग्नि से उस कलंक को धो दिया है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

उनको भस्म कर सिद्ध हुए। आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधा था, उस भाव को भी भस्म करके केवली हुए। आहाहा! उस भाव का भी नाश किया, तब केवली हुए, सिद्ध हुए। आहाहा! वह है न, भाई! नहीं वह? जामनगर नहीं आया था, वह राजकोट वाला? क्या नाम? वह आया था न अभी? मुम्बई।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वह बनिया। पहले वैष्णव था, फिर स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी (हो गया)। रतिलाल। कैसा? ... हाँ। राजकोटवाला आया था न वहाँ? मुम्बई आया था। हाँ, आया था न। अभी कहे कि ध्यान करता हूँ। अभी बौद्ध में गया है। बौद्ध के साधु मिले होंगे न, तो उनके शिक्षण शिविर में सम्मिलित होकर पैसा उगाहता है। बौद्ध में मिला है। कुछ ठिकाने बिना का...

मुमुक्षु : वैष्णव था।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले था वैष्णव, फिर हुआ स्थानकवासी, फिर हुआ श्वेताम्बर। तब आया था न वहाँ जामनगर लेकर। वापस इस बार आया था। मुझे पूछना है। देखो! यह ध्यान-ध्यान। किसका ध्यान? मैं ध्यान करता हूँ। बौद्ध में ध्यान करते हैं न? बौद्ध में मिला है। शिक्षण शिविर करता है, उसमें पैसा उगाहता है। पैसावाला है। कुछ पाँच-पच्चीस लाख है। आहाहा! ऐसे के ऐसे। ध्यान करते (हैं), कहते हैं। किसका ध्यान? कहा। वस्तु क्या है, उसके भान बिना ध्यान किसका? किसका ध्यान? मैं ध्यान करता

हूँ। वे बौद्ध करते हैं न? बौद्ध में आता है, भाई! पूर्व भव का याद करने का बहुत आता है। पूर्व भव, उसका ध्यान बहुत करते हैं लोग। बौद्ध के साधु पूर्वभव के स्मरण के लिये। आहाहा! अब पूर्वभव के स्मरण के लिये ध्यान, वह क्या ध्यान? वह कहीं ध्यान कहलाता है? परभव कहाँ था, उसका ध्यान वह ध्यान कहलाता है?

ध्यान तो आत्मा के स्वभाव का आश्रय लेकर लीन हो और जिसमें परम आनन्दरस आवे, उसे ध्यान कहते हैं। आहाहा! हम ध्यान करते हैं। किसका ध्यान? दो बार आया था। वह रमणीकभाई के यहाँ। तब हम उतरे थे न वहाँ आया था। यह जैन में जन्मे, जैन में आये, उसे भी कुछ भान नहीं होता।

अब कर्मकलंक की व्याख्या करते हैं। **कर्मकलंक अर्थात् द्रव्यकर्म भावकर्म...** दो। कर्मकलंक का नाश किया न? अब कर्मकलंक अर्थात् क्या? कि द्रव्यकर्म जड़ और भावकर्म राग-द्वेष। **इनमें से जो पुद्गलपिण्डरूप ज्ञानावरणादि आठ कर्म वे द्रव्यकर्म हैं,...** जड़ कर्म। **और रागादिक...** विकल्प जो पुण्य-पाप का भाव, वह **संकल्प-विकल्प परिणाम भावकर्म कहे जाते हैं। यहाँ भावकर्म का दहन...** लो! है? यह अशुद्ध विकारी भाव। इनका दहन **अशुद्ध निश्चयकर हुआ,...** यह क्या कहा? ध्यानाग्नि से कर्मकलंक का नाश किया। अब कर्मकलंक के दो प्रकार:—एक जड़कर्म और एक अशुद्ध भावकर्म / विकारी भाव। यह अशुद्धनिश्चयकर नाश किया। क्योंकि उसकी पर्याय में थे न वे? भावकर्म का नाश अशुद्धनिश्चयनयकर किया। समझ में आया?

स्वरूप का ध्यान करने से अशुद्धता के परिणाम का नाश (हुआ), वह अशुद्ध निश्चयनय से कहने में आता है। क्योंकि उसकी पर्याय में है न? इसलिए अशुद्ध निश्चय से नाश किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! और द्रव्यकर्म का नाश, ध्यान से कर्मकलंक भस्म किया। अब कर्मकलंक अर्थात् क्या? इसकी व्याख्या की। कर्म-कलंक के दो प्रकार। जड़कर्म और अशुद्ध भावकर्म। अशुद्ध भावकर्म का नाश, वह अशुद्ध निश्चयनय से कहा जाता है। क्योंकि उसकी पर्याय में था। है व्यवहारनय, परन्तु उसकी पर्याय में था, इस अपेक्षा से निश्चय, मलिन है, इसलिए अशुद्ध, उसका नाश किया, यह अशुद्ध निश्चयनय से कहा जाता है। अब ऐसा कहाँ सीखे? ऐई! मगनभाई! धन्धा में रहना या यह करना? आहाहा!

णमो अरिहंताणं आया न? उसमें कहते हैं कि कर्मरूपी जड़ शत्रु और भावकर्मरूपी भावकर्म शत्रु। दोनों को हनन करने में विकारी भाव का नाश किया और वह अशुद्ध निश्चयनय से कहा जाता है और भगवान ने कर्म नाश किये, यह द्रव्यकर्म असद्भूत— झूठी दृष्टि से (कहा जाता है)। **असद्भूत अनुपचरित...** कर्म नजदीक में है न? स्त्री-पुत्र पर है और कर्म नजदीक हैं, इसलिए अनुपचरित। स्त्री-पुत्र का त्याग करना, वह उपचरित असद्भूतव्यवहारनय कहा जाता है। बहुत सरस वर्णन किया है।

असद्भूत अर्थात् कि आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय में जड़कर्म नहीं। उसकी पर्याय में भी जड़कर्म नहीं, इसलिए असद्भूत। अनुपचरित परन्तु नजदीक में है; इसलिए अनुपचरित। **व्यवहारनयकर...** अर्थात् परवस्तु है न? **व्यवहारनयकर हुआ...** द्रव्यकर्म का नाश असद्भूत अनुपचरित व्यवहारनय से कहा गया है। कठिन, भाई! एक-एक व्याख्या! क्या कहा यह?

सिद्ध भगवान ध्यानाग्नि से कर्म के कलंक को नाश करते हुए। अब इसकी व्याख्या। ध्यान अर्थात् क्या? कि शुद्ध स्वरूप को ध्येय बनाकर अखण्डानन्द पूर्णानन्द को ध्येय बनाकर जो पर्याय हो, वह ध्यान। अब ध्यान में होता क्या है उसका फल? कि जिसमें परमानन्द सुख, वीतराग सुखरसी भाव प्रगट हो, वह ध्यान का लक्षण। अब उस ध्यान द्वारा कर्म का नाश किया। तो कर्म किस प्रकार के? कर्म दो प्रकार के। एक जड़कर्म, एक अशुद्धता का भावकर्म। अशुद्धता के भावकर्म का नाश अशुद्ध निश्चयनय से कहने में आता है और जड़कर्म का नाश असद्भूत अनुपचार व्यवहार से कहने में आता है। क्योंकि आत्मा की पर्याय में नहीं परन्तु अनुपचरित—नजदीक में है। व्यवहार अर्थात् परवस्तु है, निमित्त है, वह व्यवहार हो गया। वह असद्भूत अनुपचार व्यवहारनय से उसका नाश किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! पर है न, इसलिए व्यवहार। अशुद्धता, वह तो अशुद्ध निश्चय हुआ। विकारी अपने में ही है न? इसलिए अशुद्ध निश्चय। वह (जड़कर्म) तो परवस्तु है इसलिए व्यवहार हो गया। आहाहा! अब ऐसा कब सीखना? यह दूसरे जो अन्यमति दूसरे प्रकार से कहते हैं न? इसका निराकरण करने के लिये यह बात है। समझ में आया? यह कहेंगे अभी। शब्दनय, आगमनय, मतार्थनय पाँचों ही वापस इसमें घटित करेंगे। आहाहा!

शुद्ध निश्चयकर तो जीव के बन्ध-मोक्ष दोनों ही नहीं है। त्रिकाली भगवान मोक्षस्वरूप ही है। उसके बन्ध-मोक्ष की पर्याय में त्रिकाली निश्चयनय की अपेक्षा से उसमें है नहीं। बन्ध-मोक्ष तो पर्यायनय की अपेक्षा से है। आत्मा को अशुद्ध भावकर्म का बन्ध, अशुद्धनय अर्थात् पर्यायनय हुआ। और जड़कर्म का नाश, वह भी पर्यायनय अर्थात् पर व्यवहारनय और वह भी असद्भूत। उसे इस प्रकार से कहने में आया। आहाहा! णमो अरिहंताणं। कर्मरूपी वैरी को नाश किया। कर्म तो जड़ है। जड़ को आत्मा नाश करे? परन्तु जड़ की अवस्था अशुद्ध, कर्म का नाश होने के काल में कर्म की अवस्था अकर्मरूप होने का उसका काल था, इसलिए वह हुई। परन्तु भगवान आत्मा ने इसका नाश किया। यह असद्भूत अनुपचार व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! ऐसा है! गिरधरभाई!

शुद्धनिश्चय से भगवान त्रिकाली, वह तो उसे राग की, अशुद्धता की पर्याय भी नहीं और मोक्ष की सिद्ध पर्याय भी शुद्ध में नहीं। त्रिकाली की अपेक्षा से बन्ध-मोक्ष उसकी पर्याय में है, वस्तु में नहीं। त्रिकाली की अपेक्षा से बन्ध-मोक्ष है ही नहीं। आहाहा! **बन्ध मोक्ष दोनों ही नहीं है। इस प्रकार कर्मरूपी मलों को भस्मकर जो भगवान हुए, वे कैसे हैं?** यह विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)